पर्यूषण

अंतर्मुखी मुनि श्री पूज्य सागर जी महाराज

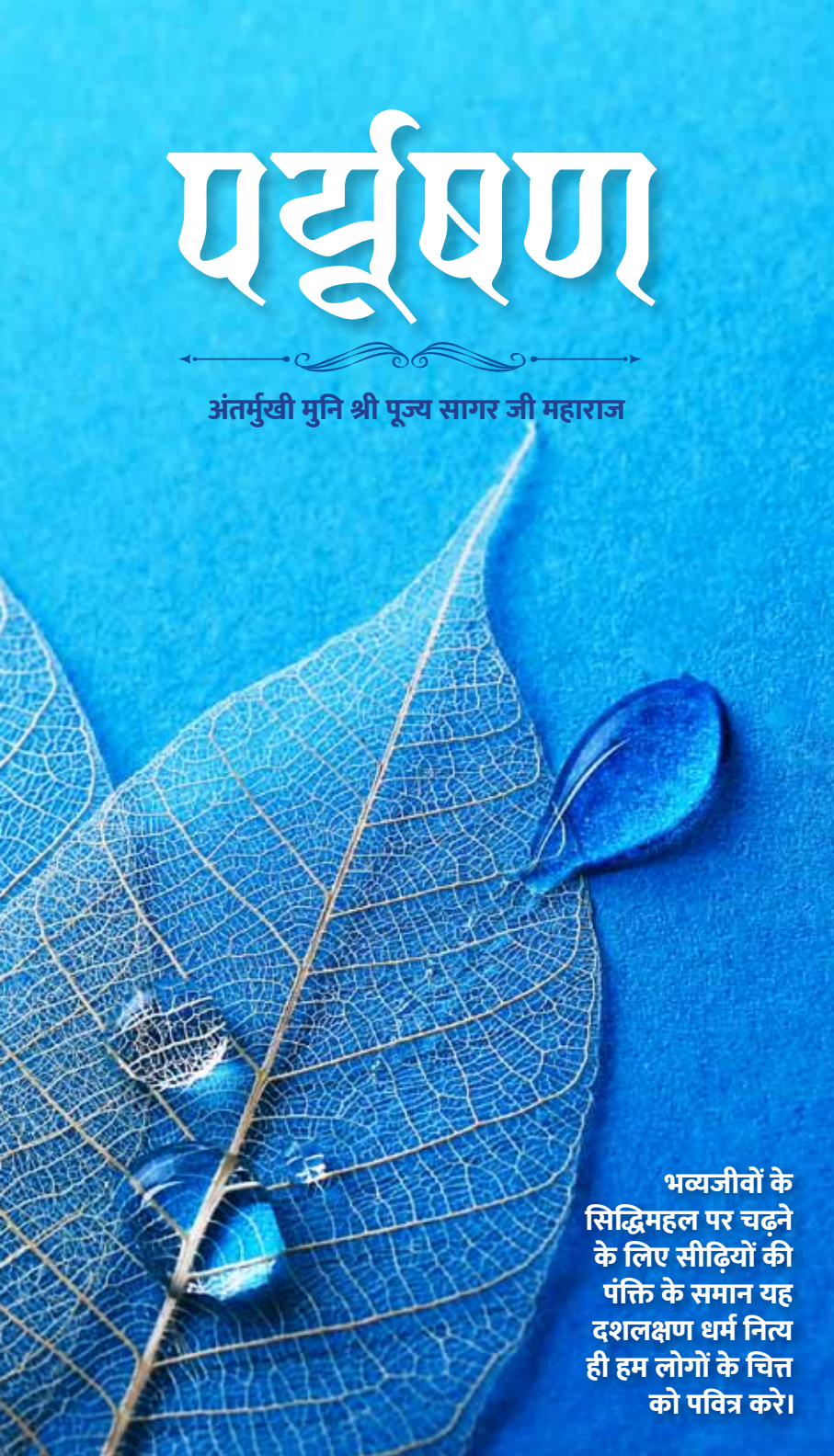

भव्यजीवों के सिद्धिमहल पर चढ़ने के लिए सीढ़ियों की पंक्ति के समान यह दशलक्षण धर्म नित्य ही हम लोगों के चित्त को पवित्र करे।

लेखक - प्रस्तुति

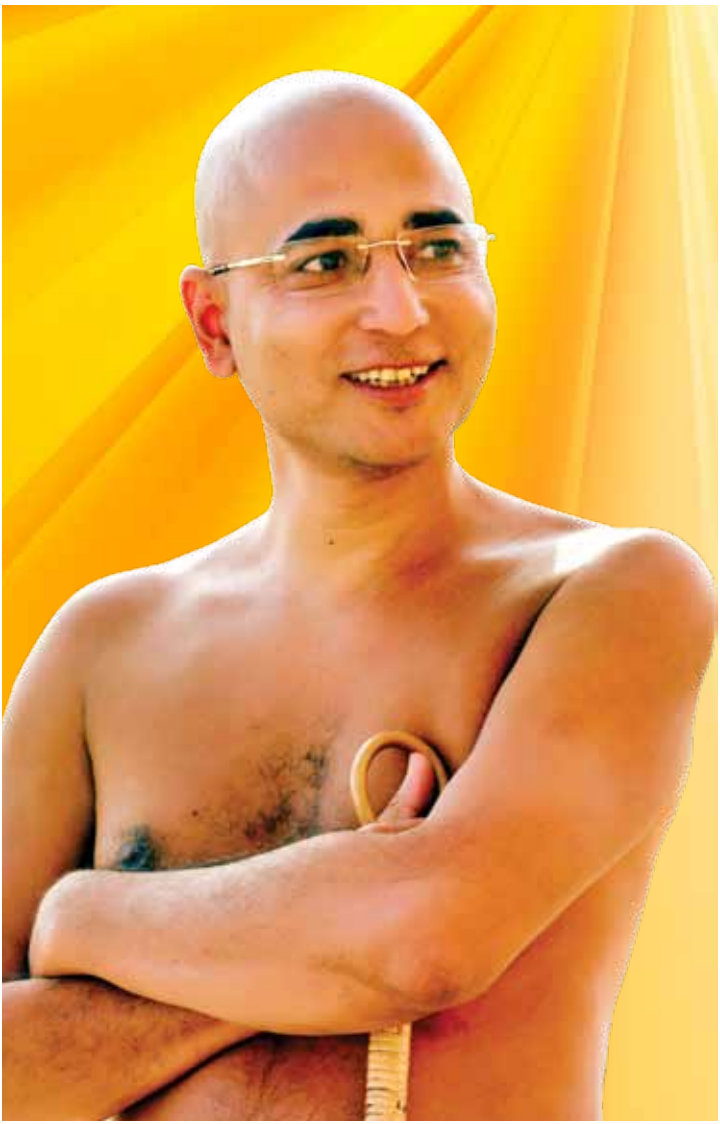

अंतर्मुखी मुनि श्री पूज्य सागर जी महाराज

पर्यूषण

प्रस्तुति

रेखा संजय जैन

संपादक, श्रीफल जैन न्यूज

नमनकर्ता

श्री नरेन्द्र शकुंतला वेद

श्री भरत रितु जैन

श्री इन्द्र कुमार वीणा सेठी

श्री नकुल प्रमिला पाटोदी

श्री हसमुख उर्मिला जैन गांधी

श्री नवीन शिवानी गोधा

श्री टी .के. मंजू वेद

श्री आर.के. मैना जैन (रानेका)

श्री संजय रेखा जैन

श्रीमति चन्द्रकांता जितेंद्र मोनिका हर्ष जैन

श्री डी.के. माला जैन

नमीष - ऋतु - कश्वी - प्रशम जैन

अनुक्रमणिका

01	दशधर्म एक कल्पवृक्ष है	05
03	त्रैकालिक शाश्वत पर्व है पर्यूषण पर्व	07
04	दशलक्षण पर्व का प्रारंभ	10
05	दशधर्म का संस्कृत श्लोकों में वर्णन	12
06	दशलक्षण धर्म जाप	17
07	दशधर्म के आलेख	19
08	दशधर्म की कहानियां	40
09	आत्मा की परीक्षा है उपवास	69
10	अनावश्यक का परिहार	73
11	क्षमावाणी पर्व	79

दशधर्म एक कल्पवृक्ष है

वर्ष में तीन बार होने वाला त्रैकालिक पर्व दशलक्षण पर्व कल्पवृक्ष की भांति है। भाद्रपद में दस दिनों तक होने वाले दशलक्षण पर्व का विशेष महत्व है। भाद्र शुक्लपक्ष की पंचमी तिथि से चतुर्दशी तक चलने वाले इस पर्व में व्यक्ति अपने शरीर को नहीं, बल्कि अपनी आत्मा को शुद्ध करता है। यानि यह पर्व आत्मशुद्धि का है जो व्यक्ति को आध्यात्म की तरफ मोड़ता है।

दशधर्म एक कल्पवृक्ष है। इस संबंध में आचार्य कहते हैं -

क्षमामूलं मृदुत्वं स्यात्, स्वंध शाखाः सदार्जवम्।
शौचं वं सत्यपत्राणि, पुष्पाणि संयमस्तपः।।
त्यागश्चाकिञ्चनो ब्रह्म मंजरी सुमनोहरा।
धर्मकल्पद्रुमश्चैष दत्ते स्वश्च शिवं फलम्।।
धर्मकल्पतरो ! त्वाहं समुपास्य पुनः पुनः।
ज्ञानवत्या श्रिया युत्तं, याचे मुक्त्यैकसत्फलम्।।

अर्थात् क्षमा जिसकी जड़ है, मृदुता स्कंध है, आर्जव शाखाएं हैं, उसको सिंचित करने वाला शौचधर्म जल है, सत्यधर्म पत्ते हैं, संयम, तप और त्याग रूप पुष्प खिल रहे हैं, आकिंचन और ब्रह्मचर्य धर्मरूप सुंदर मंजरियां निकल आयी हैं। ऐसा यह धर्मरूप कल्पवृक्ष स्वर्ग और मोक्षरूप फल को देता है।

दशलक्षण पर्व

सिद्धिः प्रासादनिः श्रेणी पंक्तिवत् भव्यदेहिनाम्।
दशलक्षण धर्मोयं, नित्यं चित्तं पुनातु नः।।

अर्थात् भव्यजीवों के सिद्धिमहल पर चढ़ने के लिए सीढ़ियों की पंक्ति के समान यह दशलक्षण धर्म नित्य ही हम लोगों के चित्त को पवित्र करे।

त्रैकालिक शाश्वत पर्व है पर्यूषण पर्व

अंतर्मुखी मुनि श्री पूज्य सागर जी महाराज

पर्व दो प्रकार के होते हैं। 1. तात्कालिक 2. त्रैकालिक।

तात्कालिक पर्व व्यक्ति विशेष या घटना विशेष से संबंधित होते हैं। त्रैकालिक शाश्वत पर्व न तो किसी व्यक्ति विशेष या घटना विशेष से संबंधित होता है, बल्कि इसका संबंध आध्यात्मिक भावों से है। पर्यूषण पर्व त्रैकालिक शाश्वत पर्व है। इस पर्व का दूसरा नाम दशलक्षण महापर्व भी है।

पर्यूषण

'परि समन्तात् ऊषन्ते दह्यन्ते पापकर्माणि यस्मिन् तत् पर्यूषणम्'

अर्थात जो सर्वतः पापकर्मों को जलाता है, पाप क्षय कर आत्म धर्मों को उद्घाटित करता है, आत्म गुणों को प्रकट करता है उसे पर्यूषण कहते हैं। पर्व का अर्थ गांठ ग्रंथि। जो कषाय, मोह आदि रूपी गांठ को खुलने की कला सिखाता है उसे पर्यूषण पर्व कहते हैं।

'उत्तमखमादिदासवीहो धम्मो' उत्तम क्षमा आदि दस धर्म है। 10 दिनों तक धर्म के 10 लक्षणों की चर्चा होती इसलिए इसे दशलक्षण पर्व कहते हैं।

दशलक्षण पर्व आध्यात्मिक पर्व है। यह आत्मा के लक्षणों से परिचित कराने का पर्व है। इस पर्व के आते ही 8 साल के बच्चे से लेकर 80 साल के बुजुर्ग के हृदय में पूजन, अभिषेक, उपवासादि के प्रति उत्साह होता है। यह पर्व त्याग, संयम, तप, जाप, ध्यान, वैराग्य को बढ़ाने वाला है। दशलक्षण पर्व शरीर को नहीं, आत्मा को संवारने का पर्व है। इंद्रियों को वश में करने का पर्व है। कर्म शत्रुओं पर विजय पाने के लिए ट्रेनिंग सेंटर हैं दशलक्षण पर्व। दशलक्षण पर्व श्रावकों के लिए मुनि धर्म समझने की पाठशाला के समान है। आत्म का अनुभव करवाने वाला है दशलक्षण पर्व। दशलक्षण पर्व दस दिन का होता है। दशलक्षण पर्व साल में तीन बार आता है पर भाद्रपद महीने में विशेष रूप से मनाया जाता है। दस दिन के बाद 11 वें दिन क्षमावाणी पर्व सामूहिक रूप से मनाया जाता है।

साल में तीन बार आते हैं दशक्षाण पर्व

पहला चैत्र शुक्ल 5 से 14 तक, दूसरा भाद्र शुक्ल 5 से 14 तक तथा तीसरा माघ शुक्ल 5 से 14 तक। इन तीनों के भाद्र पद में आने से दशलक्षाण पर्व का विशेष महत्त्व है। भाद्रपद माह में आने वाले इस पर्व को श्रावक विशेष रूप से मनाते हैं। इस माह को धार्मिक माह भी कहा जाता है। भारतीय संस्कृति के अनेक धार्मिक पर्व इसी माह में आते हैं। इसी में से एक जैन धर्म का पर्व है दशलक्षाण पर्व।

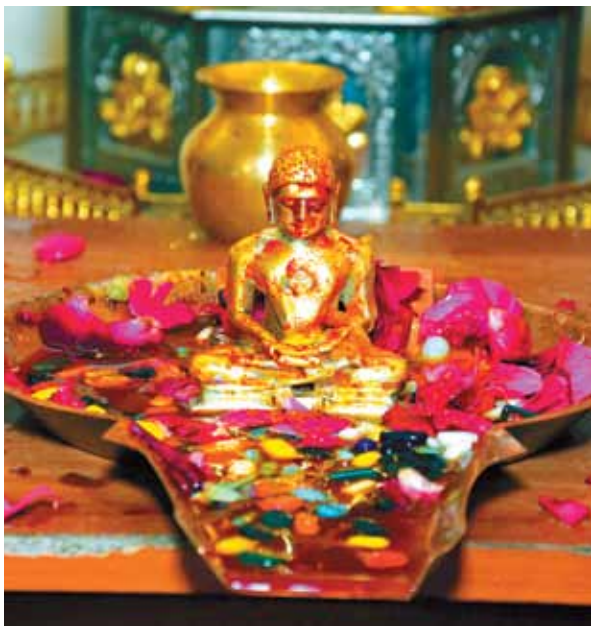

दशलक्षण पर्व का प्रारंभ

अंतर्मुखी मुनि श्री पूज्य सागर जी महाराज

अनादिकाल से पृथ्वी क्षेत्र का समूचे ब्रह्मांड में धीरे-धीरे परिवर्तन होता रहता है और एक समय आता है कि पृथ्वी पूरी तरह नष्ट हो जाती है और पुनः धीरे-धीरे प्राकृतिक सौंदर्य लौटने लगता है। यह सब धर्म के अनुसार अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल के परिवर्तन के कारण होता है। सुख, आयु, कषाय आदि जिसमें कम होती है, उसे अवसर्पिणी काल और जिसमें यह बढ़ती है, उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। इन दोनों

के बीच के संक्रमण काल में 96 दिन होते हैं। यह सृष्टि के नाश और रचना का मुख्य काल होता है। सात-सात दिन तक सात प्रकार की वर्षा होती है, जिनमें जहर, ठंडे पानी, धूम, धूल, पत्थर, अग्नि आदि की वर्षा भी शामिल होती है जिसके फलस्वरूप पूरी पृथ्वी नष्ट हो जाती है, सौंदर्य चला जाता है। इसके बाद प्राकृतिक सौंदर्य के लौटने के सात-सात दिन तक शीतल जल, अमृत, घी, दिव्य रस, दूध आदि की वर्षा होती है। इससे पृथ्वी हरी-भरी हो जाती है और चारों तरफ खुशी की लहर दौड़ पड़ती है। इस प्रकार 49 दिन तक कुवृष्टि और 49 दिन तक सुवृष्टि होती है । 49 दिन की सुवृष्टि का प्रारंभ श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी से होता है और वह भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तक होता है। उसके बाद जो 72 जोड़े मनुष्य और तिर्यंचों के देवों और विद्याधरों ने विजयार्थ पर्वत की गुफा में छिपाये थे उन्हें निकाला जाता है। वही जोड़े भाद्रपद शुक्ल पंचमी से 10 दिवसीय उत्सव मनाते हैं। उसे ही आज दशलक्षण पर्व के रूप में मनाया जाता है।

दशलक्षण पर्व त्रैकालिक पर्व (अनादि निधन) है। इस पर्व को मनाने के पीछे एक घटना है। यह घटना भी त्रैकालिक (अनादि निधन) है। जब-जब काल परिवर्तन होता है तब तब यह घटना घटती है। काल का परिवर्तन त्रैकालिक (अनादि काल) से होता आ रहा है। इसलिए दशलक्षण पर्व या अनादि पर्व कहते हैं।

दशधर्म का संस्कृत श्लोकों में वर्णन

अंतर्मुखी मुनि श्री पूज्य सागर जी महाराज

उत्तम क्षमा धर्म

द्रव्यं भावं द्विधा क्रोधं भित्वाहं स्वात्मचिंतनात्।
उत्तमक्षांतियुक्स्वात्मज्ञानं लप्स्ये सुखं ध्रुवम।।

अर्थात् द्रव्य और भाव इन दो प्रकार के क्रोध को मैं अपने आत्मचिंतन के बल से भेदन करके उत्तम क्षमा से युक्त अपने ज्ञान और सौख्य को निश्चित रूप से प्राप्त करूंगा।

उत्तम मार्दव धर्म

उत्तम मार्दव धर्म का अर्थ है-'मृदोर्भावः मार्दवः' अर्थात् मृदुता का भाव मार्दव है या मार्दव मान शत्रु का मर्दन करने वाला है, यह आठ प्रकार के मद से रहित है और चार प्रकार की विनय से सहित है। देखो ! इन्द्र नाम का विद्याधर इन्द्र के समान वैभवशाली था फिर भी रावण के द्वारा पराजय को प्राप्त हुआ है और वह रावण भी एक दिन मान के वश में नष्ट हो गया। अतः मान से क्या लाभ है ? अर्थात् कोई लाभ नहीं है।

उत्तम आर्जव धर्म

आर्जवः स्याददृजोर्भावः त्रियोगं सरलं कुरू।
तिर्यग्योनिर्भवेल्लोके मायायानंतकष्टदा।।

ऋजु अर्थात् सरलता का भाव आर्जव है अर्थात् मन, वचन, काया को कुटिल नहीं करना। इस मायाचारी से अनंत कष्टों को देने वाली तिर्यंचयोनि मिलती है।

उत्तम शौच धर्म

शुचेर्भावो भवेत् शौचमन्तर्लोभो निवार्यताम्।
या निर्लोभवती देवी त्वया नित्यमुपास्यताम्।।

शुचि-पवित्रता का भाव शौच है अर्थात् अंतरंग के लोभ को दूर करिए और जो निर्लोभवती देवी है उसकी नित्य ही उपासना कीजिए।

उत्तम सत्य धर्म

सत् सम्यक् च प्रशस्तं स्यात् सत्यं पीयूषभृद् वचः।
मिथ्यापलापकं वाक्यं धर्मशून्यं सदा त्यज।।

सत् अर्थात् समीचीन और प्रशस्तवचन सत्य कहलाते हैं। ये वचन अमृत से भरे हुए हैं। मिथ्या आलाप करने वाले और धर्मशून्य वचन सदा छोड़ो। सत्य वचन बोलने वालों को वचनसिद्धि हो जाया करती है और क्रम से वे दिव्यध्वनि के स्वामी होकर असंख्य प्राणियों को धर्म का उपदेश देकर मोक्षमार्ग का प्रणयन करते हैं अतः हमेशा सत्य का आदर करना चाहिए।

उत्तम संयम धर्म

प्राणीन्द्रियैर्द्विधा प्रोक्तः संयमः संयतैः जनैः।
षट्काय जीव रक्षास्यात् पंचेन्द्रिय मनोजयः।।।

अर्थात् समिति में प्रवृत्त हुए मुनि जो प्राणी हिंसा और इन्द्रिय विषयों का परिहार करते हैं वह संयम है। संयत मुनियों में प्राणी संयम और इन्द्रिय संयम की अपेक्षा दो भेद हैं। पांच स्थावर और त्रस ऐसे षट्कायजीवों की रक्षा करना प्राणी संयम है और पांच इन्द्रिय तथा मन का जय करना इन्द्रिय संयम है।

उत्तम तपधर्म

तपो द्वादशधा प्रोक्तं, बाह्याभ्यंतर संयुतम्।
बाह्यमनशनादिस्यात्, प्रायश्चित्तादि चांतरम्।।

'कर्मक्षयार्थं तप्यत इति तपः' अर्थात् कर्मक्षय के लिए जो तपा जाता है वह तप है। तप के बाह्य और अभ्यंतर से युक्त बारह भेद कहे गये हैं। अनशन, अवमौदर्य, वृत्तपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश ये छह बाह्य तप हैं और प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छह अंतरंग तप हैं।

उत्तम त्यागधर्म

रत्नत्रयस्य दानं स प्रासुक त्याग उच्यते।
चतुर्धा दानमप्यार्षात् त्रिधा पात्राय दीयते।।

'संयतस्य योग्यं ज्ञानादिदानं त्यागः' अर्थात् संयत के योग्य ज्ञान आदि को देना त्याग है। रत्नत्रय का दान देना वह प्रासुक त्याग कहलाता है और तीन प्रकार के पात्रों के लिए चार प्रकार का दान देना भी त्याग है, ऐसा आर्ष ग्रंथों में कहा है।

उत्तम आकिंचन्य धर्म

अकिंचनो न मे किंचित् आत्मानंत गुणात्मकः।
पर द्रव्यात् सदा भिन्नस्त्रैलोक्याधिपतिर्महान्।।

'उपात्तेष्वापि शरीरादिषु संस्कारापोहाय ममेदमित्यभिसंधि निवृत्तिराकिञ्चन्यम्'

अर्थात् जो शरीर आदि अपने द्वारा ग्रहण किए हुए हैं उनमें संस्कार को दूर करने के लिए यह मेरा है इस प्रकार के अभिप्राय का त्याग करना आकिंचन्य धर्म है।

'न मे किंचन अकिञ्चनः' मेरा कुछ भी नहीं है अतः मैं अकिञ्चन हूं। फिर भी मेरी आत्मा अनंतगुणों से परिपूर्ण है। मैं सदा परद्रव्य से भिन्न हूं और तीन लोक का अधिपति महान हूं ऐसा समझकर निर्ग्रंथ मुद्रा को ही मोक्षमार्ग मानना चाहिए और इस आकिञ्चन्य धर्म की उपासना करके अपने आत्मगुणों को विकसित करना चाहिए।

उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म

आत्मैव ब्रह्मा तस्मिन् स्यात् चर्येति ब्रह्मचर्यभाक्।
वासो वा गुरुसंघेपि ब्रह्मचारी स उत्तमः।।

अर्थात् आत्मा ही ब्रह्म है। उस ब्रह्मस्वरूप आत्मा में चर्या करना ही ब्रह्मचर्य है अथवा गुरु के संघ में रहना भी ब्रह्मचर्य है। इस विधचर्या को करने वाला ब्रह्मचारी कहलाता है।

दशलक्षण धर्म जाप

पहला दिन

उत्तम क्षमा धर्म के जाप

ऊँ ह्रीं उत्तम क्षमाधर्मांगाय नमः

दूसरा दिन

उत्तम मार्दव धर्म के जाप

ऊँ ह्रीं उत्तम मार्दवधर्मांगाय नमः

तीसरा दिन

उत्तम आर्जव धर्म के जाप

ऊँ ह्रीं उत्तम आर्जवधर्मांगाय नमः

चौथा दिन

उत्तम शौच धर्म के जाप

ऊँ ह्रीं उत्तम शौचधर्मांगाय नमः

पांचवां दिन

उत्तम सत्य के जाप

ॐ ह्रीं उत्तम सत्यधर्मांगाय नमः

छठवां दिन

उत्तम संयम के जाप

ॐ ह्रीं उत्तम संयमधर्मांगाय नमः

सातवां दिन

उत्तम तप धर्म के जाप

ॐ ह्रीं उत्तम तपधर्मांगाय नमः

आठवां दिन

उत्तम त्याग धर्म के जाप

ॐ ह्रीं उत्तम त्यागधर्मांगाय नमः

नौवां दिन

उत्तम आकिंचन धर्म के जाप

ॐ ह्रीं उत्तम त्याग आकिंचन्य धर्मांगाय नमः

दसवां दिन

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म के जाप

ॐ ह्रीं उत्तम ब्रह्मचर्य धर्मांगाय नमः

दशधर्म के आलेख

लेखक :
अंतर्मुखी मुनि श्री पूज्य सागर जी महाराज

उत्तम क्षमा धर्म

पर्व उल्लास का प्रतीक होते हैँ। पर्व हैं तो संस्कृति है और संस्कृति है तो उमंग है, उत्साह है। इसी कड़ी में दशलक्षाण पर्व का प्रारंभ आज से होने जा रहा है। दशलक्षाण पर सभी वर्ग के श्रावक अपनी शक्ति के अनुसार त्याग, तप और संयम की आराधना के साथ प्रभु भक्ति करेंगे। दशलक्षाण पर्व का आगाज उस समय हुआ था जब मानव दुःख से सुख की ओर कदम बढ़ा रहा था। उसी ख़ुशी में दस दिन तक भक्ति आराधना का क्रम प्रारंभ हुआ। पहला दिन उत्तम क्षमा का दिन है। क्षमा से व्यक्ति को इस भव के साथ अगले भव में सुख मिलता है। जीवन के हर कार्य के साथ क्षमा का होना आवश्यक है तभी वह अपने आप को संकट से बचा सकता है। जीवन में सुख, शांति और समृद्धि धारण कर सकता है। परिवार, आफिस और दोस्तों के विवादों से बचने के लिए उनके हर कार्य के प्रति

क्षमा का भाव धारण करना, जैसे परिवार में किसी ने आप को यह कहा दिया कि ये किसी काम का नहीं तो उस समय क्षमा धारण कर यह सोचना चाहिए कि ये पाप का उदय है, तो आप विवादों से बच जायेंगे और परिवार में शांति बनी रहेगी। इस तरह आफिस और दोस्तों के बारे में सोच लेंगे तो झगड़े और क्रोध से बच जाएंगे। वास्तव में क्षमा करने से अधिक लाभ क्षमा को धारण करने से, परिणाम और भाव विशुद्ध होते है। क्षमा के अभाव में व्यक्ति क्रोध को जगह देता है और जीवन को संकट में डाल देता है। यह पर्व आत्मशुद्धि का भी कहा जा सकता है। जब आपकी आत्मा पवित्र और शुद्ध होगी तो आपका मन भी प्रसन्न रहेगा।

क्षमा के अभाव में व्यक्ति क्रोध को स्थान देता है।

- मुनि पूज्य सागर महाराज

उत्तम मार्दव धर्म

उल्लसित करने वाले पर्व का आज दूसरा दिन है। इसे मार्दव धर्म कहते हैं। सच्चे शब्दों में इसकी परिभाषा यह है कि स्वयं को छोटा मानकर, सभी से मीठा बोलना, आंखें झुकाकर बात करना। इसमें यह भी ध्यान रखा जाये कि ध्यान डर के कारण, लोभ के कारण, राग के कारण या शक्ति नहीं होने के कारण करना मार्दवता नहीं है। सर्वगुण संपन्न होने पर भी जब दूसरों के प्रति उपकार का भाव आता है वही वास्तव में मार्दवता है। मार्दव धर्म मान कषाय के अभाव में आता है। रावण जैसा शक्तिशाली, ज्ञानी, धनवान अनेक ऋद्धियों को धारण करने वाला, सुंदर और उत्तम कुल के साथ ही इतना पुण्यात्मा था कि आने वाले समय में वह तीर्थंकर होता पर वह उस भव से अपने अहंकार के कारण नरक में गया और लोक में आज भी

उसका नाम सुनते ही लोगों के अंदर उसके प्रति शत्रुता का भाव जाग्रत हो जाता है, जबकि वर्तमान में लोगों का उसने कुछ नही बिगाड़ा पर उसने अहंकार मे आकर एक स्त्री का हरण कर लिया, हालांकि उसे स्पर्श तक नहीं किया पर अहंकार के कारण उसके सारे गुण नष्ट हो गये। आज भी हम उसे जलाते हैं और अपने परिवार में उसका नाम तक नही रखते हैं। इस धर्म से हमें सीख लेनी चाहिए कि हमारे अंदर के लोभ, ईर्ष्या, क्रोध, जलनशीलता रूपी रावण को निकालकर प्रेम, स्नेह, सहयोग रूपी राम को जगह दें तभी मार्दव धर्म हमारे अंदर प्रवेश कर सकता है। कहा जा सकता है कि सभी तरह के अहंकार को धरातल पर रखकर जीना ही मार्दव धर्म को अपनाना है।

अहंकार को धरातल पर रखकर जीना ही मार्दव धर्म है।

- मुनि पूज्य सागर महाराज

उत्तम आर्जव धर्म

जीवन में हमेशा प्रसन्नतारूपी रथ पर सवार हों, खुशियों का दामन ना छोडें। इसके लिए दशलक्षण धर्म का तीसरा कदम यानी उत्तम आर्जव धर्म अपनाना अत्यंत आवश्यक है। हमारे आचार्यों ने मन, वचन और कार्य से सात्विक व्यक्ति के आचारण को आर्जव धर्म माना है। जब मनुष्य का मन, वचन और काय किसी एक कार्य में एक साथ लग जाये तो समझ लेना चाहिए कि उसके जीवन में आर्जव धर्म का प्रवेश हो गया है। समस्त शुभ-अशुभ कर्म का संबंध भी मन, वचन और काय ही होते हैं। जब व्यक्ति मन, वचन और काय को शुभ कार्य में लगाता है तो सुख, शांति

और समृद्धि का अनुभव करता है, वहीं जब अशुभ कार्य में मन लगाता है तो दुख, क्लेश का अनुभव करता हुआ मानसिक संतुलन खो बैठता है। इससे भी कहीं अधिक जब शुभ-अशुभ कार्य को छोड स्वयं मे स्थिर हो जाता है तो वह परमात्मा बन जाता है। आर्जव धर्म के अभाव में ही व्यक्ति मानसिक रोगों से घिरता है। सही मायने में वर्तमान में जीवने वाला व्यक्ति ही आर्जव धर्म को स्पर्श कर सकता है।

प्रसन्नता के रथ पर सवारी के लिए अपनाएं उत्तम आर्जव धर्म।

- मुनि पूज्य सागर महाराज

उत्तम शौच धर्म

जीवन में साफगोई और स्वच्छता बडे मायने रखती हैं। स्वच्छता को ही जीवन में उतारने का भाव दर्शाता है दशलक्षण पर्व का चौथा दिन। यानी उत्तम शौच धर्म। जीवन में फैली मलीनता को दूर करना ही उत्तम शौच धर्म का पालन करना है। ऐसी गंदगियां जीवन में कदम दर कदम मिलती हैं। देखा जाये तो मलीनता को शरीर में प्रवेश करने का जरिया शरीर की कुछ घ्राणेंद्रियां ही हैं, मसलन आंख, नाक, कान, जिह्वा और त्वचा। आंखों ने परिवार के किसी के पास कोई अच्छी देखी वह हमारे काम की भी नहीं पर उसे लेने का इच्छा प्रकट हो जाती

है, बस आंखों ने लोभ की गंदगी को अपने अंदर जगह दे दी। कानों ने सुना कि सोने का भाव कम हो गया है, तुरंत विचार आता है क्यों ना सोना खरीद लें, जब भाव बढ़ेगा तब वापस बेच देंगे। बस इसी प्रकार से नाक, त्वचा और जिह्वा भी जीवन में लालच व लोभ की मलीनता से जीवन को भर देती हैं। इन सभी भावों को त्यागकर ही हम जीवन में खूबसूरती को पल्लवित कर सकते हैं।

मन की स्वस्छता के लिए जरूरी उत्तम शौच धर्म।

- मुनि पूज्य सागर महाराज

उत्तम सत्य धर्म

दशलक्षण धर्म के पांचवें कदम यानि उत्तम सत्य धर्म को बीज धर्म के समान माना गया है। इसे कुछ यूं समझें कि बीज अच्छा हो, जमीन उपजाऊ हो तो फसल स्वतः ही अच्छी होगी। परंतु बीज, अच्छा हो पर जमीन उपजाऊ न हो तो फसल कभी भी अच्छी नही हो सकती। मानव जीवन में क्रोध, मान, माया, लोभ, कषाय, मद व मोह जमीन के समान है और सत्य बीज है। कषाय के साथ, राग, द्वेष, इर्ष्या, लोभ, डर और बदले की भावना से बोला हुआ सत्य भी असत्य है क्योंकि उद्देश्य गलत है। धर्मलाभ, आत्मकल्याण, दूसरों का अच्छा हो इस भाव से बोला असत्य भी सत्य है क्योंकि उदेश्य बेहतरीन है। वास्तव में मन, वचन, काय की क्रिया का बंद होना ही उत्तम सत्य धर्म

है। इसी अवस्था में व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप में आता है। स्वयं की पहचान ही वास्तव में उत्तम सत्य धर्म है। इस अवस्था में आत्मा कर्मों से रहित होती है। मौन कर्मों से रहित अवस्था का नाम है। वही बोलना कर्मों से सहित अवस्था है। बोलता वही है जिसके पास ज्ञान कम हो, जिसके पास ज्ञान होता है वह तो मौन हो जाता है, क्योंकि वह जानता है कि जो दिखाई दे रहा वह उसका है ही नही। जो मेरा है वह मौन से मिल सकता है। इसलिए सत्य को पाने के लिए मौन हो जाओ। मौन ही जीवन का आधार है।

आज का जाप-

ऊँ ह्रीं उत्तम सत्यधर्मांगाय नमः

मौन और सत्य है जीवन का आधार।

- मुनि पूज्य सागर महाराज

उत्तम संयम धर्म

आज हम पहुंच चुके हैं दशलक्षण धर्म के छठवें पायदान पर। छठा कदम यानि संयम धर्म। देखभाल कर, सही रास्ते पर चलना ही संयम है। स्वयं पर पूरी तरह नियंत्रण करना भी संयम माना गया है। प्राणियों के प्रति हिंसा ना हो जाये और इंद्रियों का दुरुपयोग ना हो जाये इस बात का ध्यान रखना भी संयम है। असंयम की स्थिति इन दो कार्यों से ही बनती है। इन दोनो बातों का ध्यान रखने से शरीर में किसी प्रकार का रोग नही होगा। खाने-पीने, सोने, चलने पर संयम धर्म नियंत्रण करता है। जिस गाड़ी में ब्रेक हो उसे किसी बात की चिंता नहीं होती। उसी तरह संयम से रहने वाला प्राणी चिंता मुक्त होकर अपने जीवन के विकास के मार्ग पर लगा रहता है। संयम धर्म व्यायाम करने वाली जिम के समान है। जिम में जाने वाला व्यक्ति अपने खाने और चलने पर ध्यान देता है, तभी वह

शरीर को हृष्ट- पुष्ट रखने के साथ स्वस्थ रखता है। मन, वचन और काय पर नियंत्रण का पाठ संयम धर्म सिखाता है। संस्कृति और संस्कारो का संरक्षण भी इसी धर्म से होता है। व्यक्ति के संस्कार और संस्कृति की पहचान उसके खाने, सोने, पहनने और बोलने से होती है। इन सब बातों को मर्यादा में रखना ही संयम धर्म सिखाता है। हम प्राणी संयम के लिए पानी छान कर पियेंगे तो देखने वाला क्या कहेगा यह धर्मात्मा है, जब विदेश में पानी छानेंगे तो कहेगा भारतीय संस्कृति, जैन संस्कृति में ऐसा ही होता है। जब हम किसी को आप कहकर पुकारेंगे और उसका सहयोग करेंगे तो वचन और काय पर संयम होगा।

स्वयं पर नियंत्रण करना सिखाता है।

- मुनि पूज्य सागर महाराज

उत्तम तप धर्म

दशलक्षण धर्म का सातवां कदम यानी 'उत्तम तप धर्म'। तप को अध्यात्म का मूल माना गया है। तप शरीर को कष्ट देकर किया जाता है। जैसे सोने को तपाकर आभूषण बनायें जाते हैं उसी तरह शरीर को तपाकर ही आत्मा को परमात्मा बना जा सकता है। सोना तब तक ही स्वर्ण रहता है जब तक वह तिजोरी में बंद था। जब वह तपकर गहना बन गया और शोरूमों की शान बढ़ाने लगा तो लोगों की आंखों का नूर हो गया, प्रशंसा का पात्र बन गया। उसी तरह भले ही तप करने से शरीर को कष्ट होता हो, परेशानी होती हो, लेकिन उसके बाद तो आत्मा पूज्य हो जाती है। कोयले को सफेद बनाने की

शक्ति संसार में यदि किसी के पास है तो वह है अग्नि। जब वह कोयला को अपनी संगति में कर लेता है तो वह कोयला राख बनकर सफेद हो जाता है। व्यक्ति संतुलित भोजन, ध्यान, बड़ों का सम्मान, पापों की स्वीकारोक्ति और गुरु सेवा के माध्यम से जीवन में तप को बढ़ा सकता है। तप शक्ति परीक्षण स्थल है, जो इसमें पास हो गया, वह मोक्ष को प्राप्त करने का हकदार हो जाता है।

अध्यात्म का
मूल है तप।

- मुनि पूज्य सागर महाराज

उत्तम त्याग धर्म

दशलक्षण धर्म का आठवां कदम 'उत्तम त्याग धर्म'। यह कदम व्यक्ति के पूर्ण त्याग या मर्यादित रहने का उपदेश देता है। सही मायने में त्याग के बिना कोई भी धर्म जीवित नहीं रह सकता। धर्म तथा आत्मा को जीवित रखने के लिए त्याग नितांत जरूरी है। समस्त जड़ वस्तु का त्याग करने वाला ही मुक्ति को प्राप्त कर पाता है। धर्म के साथ त्याग ही 'उत्तम त्याग' है और पुण्य का कारण भी। जर-जोरू-जमीन को मन, वचन और काय के साथ त्याग करना ही धर्म है नहीं तो मात्र त्याग है। इन तीनों का उपयोग धर्म कार्य में किया जाये तो संसार मे सुख, शांति और समृद्धि के साथ मोक्ष मिलती है। जर

(संपत्ति) का उपयोग अध्यात्म की उन्नति के लिए मंदिर बनवायें और व्यक्तियों के अंदर वात्सल्य और उपकार की भावना और राष्ट्र विकास के लिए अस्पताल, स्कूल और व्यक्ति में मानवता जाग्रत करने के लिए करें। जोरू (स्त्री) को भोग का नहीं, धर्म का साधन मानें। भोग का साधन मानने वालों के लिए वह काली, दुर्गा है और धर्म का साधन मानने वालों के लिए सरस्वती, लक्ष्मी है। जमीन का उपयोग मन्दिर, साधना केंद्र, अनाथों के लिए घर और जीवनयापन के लिए खेती के उपयोग में करें तभी भगवान आदिनाथ का कृषि कर्म पूरा होगा।

त्याग के बिना सर्वधर्म अपूर्ण।

- मुनि पूज्य सागर महाराज

आकिंचन्य धर्म

दशलक्षण धर्म का नौवां कदम है आकिंचन्य धर्म। आकिंचन्य धर्म आत्मा की उस दशा का नाम है जहां पर बाहरी सब छूट जाता है, किंतु आंतरिक संकल्प विकल्पों की परिणति को भी विश्राम मिल जाता है। बाहरी परित्याग के बाद भी मन में 'मैं' और 'मेरा' का भाव निरंतर चलता रहता है, जिससे आत्मा बोझिल होती है और मुक्ति की ऊर्ध्वगामी यात्रा नहीं कर पाती। परिग्रह का परित्याग कर परिणामों को आत्मकेंद्रित करना ही अकिंचन धर्म माना गया है। आकिंचन्य यानि त्याग करना, छोड़ने का दिन। मैं और मेरा का त्याग करना ही आकिंचन्य धर्म है। घर लौटने का नाम भी आकिंचन्य कहा गया है। घर से मतलब आत्म में लौटना। इसे थोड़ा यूं समझें कि आप सांप सीढ़ी के अंतिम पायदान 98 पर पहुंच गये। यहां से 99 पर

गये तो यहां से गिरे तो जहां से यात्रा शुरू की थी वही पहुंच जायेंगे और 100 पर गये तो विजेता हो जायेंगे। अपने अंतर्मन में झांककर आत्मा की आवाज सुनते हुए त्याग करना सही मायने में इस धर्म को जीना है। आकिंचन्य धर्म की भावना करो कि यह आत्म शरीर से भिन्न है, ज्ञानमयी है, उपमा रहित है, वर्ण रहित है, सुख संपन्न है, परम उत्कृष्ट है, अतींद्रिय है और भयरहित है, इस प्रकार से आत्मा का ध्यान करो, यही आकिंचन्यहै।

आज का जाप –

'ऊँ ह्रीं उत्तम त्याग आकिंचन्य धर्मांगाय नमः

आत्मा का ध्यान करना ही आकिंचन्य धर्म।

- मुनि पूज्य सागर महाराज

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

दशलक्षण धर्म का अंतिम परंतु सबसे प्रभावी लक्षण है उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म। शास्त्रों के अनुसार अतीन्द्रिय आनंद जहां पर उद्भूत होता है, वह जीव की ब्रह्मचर्य की दशा मानी जाती है। आत्म की प्राप्ति होना उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म कहा गया है। गुरु की आज्ञा में रहना और उनके मार्गदर्शन पर चलना भी ब्रह्मचर्य धर्म है। सादगी पूर्ण जीवन जीना, राग भाव का ना होना और इंद्रियों से नाता तोड़कर अपने आप को ध्यान के लिए तैयार कर लेना ही वास्तव में ब्रह्मचर्य धर्म है। ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करने से शक्ति का संचार होता है, स्मरण शक्ति बढ़ती है और चेहरे पर चमक आती है। पश्चिमी सभ्यता को अपनाने वाला कभी भी ब्रह्मचर्य धर्म का पालन नहीं कर सकता है। ब्रह्मचर्य को बहुत सरल शब्दों में समझना चाहें तो यह कह सकते है कि जो परिवार और समाज के संस्कार और संस्कृति को अपना

लेगा वही ब्रह्मचर्य धर्म का निर्वाह कर सकता है।

देव गति मे देवों के लिए तो स्पष्ट वर्णन आया है कि स्पर्श, रूप, शब्द और मन से मैथुन हो जाता है। मनुष्यों में हम देखते है किस प्रकार से पश्चिम संस्कृति के कारण हमारे आप-पास का वातावरण खराब होने के कारण मन, वचन और काय से विकार भाव हो जाते हैं, वासना का भाव जाग जाता है। ब्रह्मचर्य धर्म के निर्वाह के लिए इंद्रियों पर नियंत्रण रखने के साथ ही भारतीय संस्कार और संस्कृति ग्रहण करने का भाव पैदा करना होगा। तभी हम ब्रह्मचर्य को जीवन में आत्मसात कर पायेंगे।

आज का जाप –

ऊँ ह्रीं उत्तम ब्रह्मचर्य धर्मांगाय नमः

इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण ही ब्रह्मचर्य धर्म।

- मुनि पूज्य सागर महाराज

दशधर्म की कहानियां

लेखक :
अंतर्मुखी मुनि श्री पूज्य सागर जी महाराज

कैसा हो आचार-व्यवहार

यदि आप किसी से पूछिए कि धर्म क्या है तो संभव है कि अधिकतर लोग कुछ पल के लिए ठिठक जाएं। भगवान राम ने धर्म की परिभाषा रामायण में बताई है। उन्होंने कहा है- परहित सरिस धर्म नहीं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई। वास्तव में यही सबसे बड़ा धर्म है। जैन समाज हमेशा से ही सेवा की संकल्पना के साथ साथ धर्म की बात करता है। कहा जाता है कि यदि आपने सत्य वचन को जीवन का मूल बना लिया, तो बड़े से बड़े संकट में भी आप सुखी रहेंगे।

उत्तम क्षमा धर्म

क्षमा सबसे बड़ा गुण

करबद्ध हैं नमन
मित्र सखा सभी जीवंत
हो अगर भूल कोई मुझसे
तो क्षमाप्रार्थी हूं मैं सबसे
यह अनमोल भेंट देकर मुझे
कृतज्ञ करें इस जीवन में

जैन धर्म में दशलक्षण पर्व मनाया जाता है। यदि इन दशलक्षणों को जीवन में अपना लिया जाए तो मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है। इसमें पहला है- उत्तम क्षमा। मुनि महाराज ने जीवन भर इन गुणों को अपनाया है। कई अपशब्द सुनने के बाद भी मुनि महाराज कोई प्रतिक्रिया नहीं देते हैं। सामने वाले को क्षमा कर देते हैं।

पर्यूषण

करीब सौ साल से भी अधिक समय की बात है। सन् 1900 में भारत में ब्रिटिश सरकार का शासन था। उस समय जीवन अभी की तरह आसान नहीं हुआ करता था। उस समय आचार्यश्री को महान संत शान्ति सागर जी महाराज के रूप में जाना जाता था। उसी कालावधि में शान्ति सागर जी महाराज विहार करते हुए धौलपुर के राजखेड़ा शहर पहुंचे। वहां पर उन्होंने तीन दिन तक प्रवचन दिया। बहुत से लोग उनका प्रवचन सुनने आते थे। चौथे दिन उन्हें विहार करने का विचार आया तो वहां के श्रावकों ने उन्हें वहीं रुकने की प्रार्थना की। तब महाराज जी ने श्रोताओं का निवेदन स्वीकार कर लिया। पांचवें दिन आचार्य आहार करने के लिए जल्दी निकल गए थे। आहार करने के बाद वे सामयिक करने का विचार कर रहे थे। तभी उन्हें आकाश में काले बादल दिखाई दिए। उन्हें यह संकेत सही नहीं लगे। उन्होंने अंदर बैठकर सामयिक करने की आज्ञा दी।

महाराज जी ने ध्यान मग्न होकर सभी जीवों के प्रति समता का भाव रखने की प्रार्थना की। उसी समय अचानक 500 से ज्यादा लोग वहां हथियार के साथ पहुंचे। श्रावकों के साथ मारपीट करने लगे। कुछ बदमाश आचार्य जी के ध्यान कक्ष

तक जाने वाले थे। तभी कुछ श्रावकों ने रोकने का प्रयास किया, तो उन्हें हाथ-पैरों में चोटें आईं। फिर वहां पुलिस पहुंची। जो लोग आचार्यश्री को नुकसान पहुंचाने आए थे, उनके मुखिया को पकड़ लिया गया। उस समय भी आचार्यश्री ध्यान में तल्लीन थे। पुलिस अधिकारी आचार्यश्री के दर्शन की इच्छा के साथ जब उनके कमरे में गए, तो पुलिस अधिकारियों ने तय किया इतने शांत मन वाले मुनि पर आक्रमण करने वालों को कड़ी सजा देनी चाहिए। आचार्यश्री को जब पता चला कि पुलिस ने बदमाशों को कड़ी सजा देने का निर्णय लिया है, तो आचार्यश्री ने प्रतिज्ञा ली कि जब तक उन बदमाशों को छोड़ा नहीं जाता, तब तक वे अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे।

पुलिस अधिकारियों ने कहा- इन बदमाशों के प्रति दया भाव रखना उचित नहीं हैं। आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? तब आचार्यश्री ने जवाब दिया, मेरे मन में इन लोगों के प्रति बिलकुल भी नफरत का भाव नहीं है। हमारी वजह से आप इन लोगों को सजा दे रहे हैं, यह देखकर आहार करना हमारे लिए संभव नहीं हैं।

ऐसा सुनकर पुलिस वाले आश्चर्यचकित रह गए कि कोई इतना उदार हृदय वाला और दयावान कैसे हो सकता है। इस

बात पर पुलिस ने सभी को बिना सजा दिए ही छोड़ दिया। जो लोग हमला करने आए थे, उन्हें भी बेहद पछतावा हुआ।

अगर हम अपने आसपास देखें, तो कई लोग छोटी-बड़ी गलतियों के लिए माफ कर देते है। हमें भी अपने जीवन में क्षमा का भाव अपनाना चाहिए।अपने शत्रु के प्रति भी मन में नफरत के भाव नहीं लाना चाहिए। और तो और...

पर्व सुगंध दशौ दिन जिनवर पूजै अति हरषाई।
सुगंध देह तीर्थंकर पद की पावै शिव सुखदाई ॥

सुगंध दशमी का महत्व

दिगंबर जैन धर्म में सुगंध दशमी का बहुत महत्व है। दसलक्षण पर्व के अंतर्गत भाद्रपद शुक्ल पक्ष में आने वाली दशमी के दिन जैन समाज के सभी लोग सुगंध दशमी पर्व मनाते है। इस व्रत को विधिपूर्वक करने से हमारे अशुभ कर्मों का क्षय होकर हमें पुण्यबंध, मोक्ष तथा उत्तम शरीर प्राप्ति होगी। सुगंध दशमी के दिन पांच पापों यानी हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का त्याग करें।

उत्तम मार्दव धर्म

आत्मा तो नश्वर है

मार्दव अर्थात मान (घमंड) तथा दीनता-हीनता का अभाव। और वह नाश जब आत्मा के ज्ञान/श्रद्धा सहित होता है, तब 'उत्तम मार्दव धर्म' नाम पाता है। जब सब कुछ क्षणभंगुर है, टिकने वाला नहीं है, कुछ समय पश्चात नाश हो जाएगा, तो किसका घमंड करना और किस बात की दीनता माननी?

आपको यह पता ही होगा कि इतिहास में सिकंदर नाम का एक महान योद्धा हुआ करता था। वह 20 साल की उम्र में ग्रीस का राजा बन गया था। वह पूरी दुनिया पर शासन करना चाहता था। सिकंदर ने यह सुन रखा था कि

भारत में बहुत पहुंचे हुए संत हुआ करते हैं। एक दिन सिकंदर सिंधु नदी के किनारे पर पहुंचा। वहां उसे एक संत दिखाई दिए। उनके मुख के शांत भाव देखकर वह आश्चर्य में पड़ गया और उन्हें अपने साथ ग्रीस चलने व साथ महल में रहने का आग्रह करने लगा। इसके साथ ही उसने संत महराज को धन-दौलत, हीरे-जवाहरात देने की बात कही। संत ने उसके साथ ग्रीस जाने से मना कर दिया और कहा कि मैं धन-दौलत का त्याग कर चुका हूं। मुझे इनकी जरूरत नहीं है।

सिकंदर को यह सुनकर बहुत गुस्सा आया और उसने अपनी तलवार निकाली, पर साधु के भाव में कोई परिर्वतन नहीं आया। साधु ने कहा- जैसे तुम इस तलवार से मेरे शरीर को कटते हुए देखोगे, वैसे ही मैं भी कटते हुए देखूंगा।

साधु ने समझाया कि तुम मेरे शरीर को ही काट सकते हो, आत्मा को नहीं। आत्मा तो नश्वर है। यह सुनकर सिकंदर की तलवार नीचे गिर गई और उसने संत से माफी मांगी। वह अपने देश लौट गया। कहा जाता है कि अपने अंतिम दिनों में वह बहुत बीमार हो गया था। मरने से पहले अपनी मां से मिलना चाहता था। उसने अपने उपचार करने वालों से कहा कि आप मेरे से जो लेना चाहते हैं, ले लो। लेकिन मुझे मेरी मां के आने

तक जिंदा रखो। हकीमों ने कहा कि आपको नहीं बचाया जा सकता।

उसे बहुत बुरा लगा कि इतनी धन-दौलत होने के बाद भी कोई उसे चंद दिनों की जिंदगी नहीं दे सकता। इसके बाद उसने घोषणा की कि मरने के बाद उसे इस प्रकार से ले जाया जाए कि सभी को उसके दोनों खाली हाथ नजर आएं और लोग यह समझ सकें कि इतनी धन-दौलत का मालिक होने के बाद भी वह मरने के बाद खाली हाथ जा रहा है।

कहानी से सीख

इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि हमें अपने जीवन में किसी भी चीज का मान नहीं करना चाहिए। हमें उत्तम मार्दव धर्म का ही पालन करना चाहिए, क्योंकि हमारे अच्छे-बुरे कर्म ही हमारे साथ जाते हैं।

उत्तम आर्जव धर्म

चरित्र ही धर्म का मूल है

आंखों से देखा और कानों से सुना सत्य नहीं होता, मात्र ज्ञान से जाना हुआ ही सत्य होता है। वस्तुनिष्ठ कथनों का आचरण करना चाहिए। चरित्र ही धर्म का मूल है तथा चरित्र का मूल सम्यक दर्शन है। वर्षा काल का वह समय, जब जीव जंतु वर्षा के कारण जमीन से बाहर विचरण करने लगते हैं। ऐसे समय में संतजन जीव दया मात्र को लेकर जीवों की हिंसा न हो, इसके लिए एक स्थान पर बैठकर वर्षा काल के समय चार माह तक एक ही स्थान पर रुककर साधना करते हैं। इसे ही चातुर्मास कहा गया है।

एक बार गुणनिधि नामक मुनिराज एक पर्वत पर मौन

होकर तपस्या कर रहे थे। तप के प्रभाव से उन्हें आकाश में चलने की दिव्य शक्ति मिली हुई थी। अतः चार्तुमास समाप्त होने के बाद वे आकाश मार्ग से चले गए। उसी समय मृदुमति मुनि आकर गांव में आहार के लिए गए। गांव के लोगों को लगा कि ये तो गुणनिधि महाराज है। अतः सभी ने उनका आदर सत्कार किया। उन्हें स्वादिष्ट भोजन कराया। मृदुमति महाराजा यह समझ गए थे कि गांव वालों से समझने में भूल हुई है। भोजन के स्वाद में आसक्त होकर मृदुमति ने किसी से कुछ नहीं कहा। उन्होंने लोगों के साथ धोखा किया। इसके लिए उन्हें तिर्यंच गति मिली। उन्होंने अगले जन्म में हाथी के रूप में जन्म लिया।

कहानी से सीख

हमें हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि हम कभी भी मायाचारी या किसी के साथ धोखा न करें। हमेशा सरल बने रहें। हमें आर्जव धर्म यही सिखाता है। जैसा हमारे मन में है, हमें वैसा ही बोलना चाहिए और काम भी उसी के अनुरूप करना चाहिए।

उत्तम शौच धर्म

बैल का जोड़ा

चम्पापुर नाम का छोटा-सा नगर था। यहां अभयवाहन नाम का एक राजा रहता था। उस नगर में लुब्धक नाम का सेठ भी रहता था। उसके पास बहुत सारे गहने और पैसे थे। लेकिन था वह बहुत ही कंजूस। उसने अपने सोने से बहुत सारे पशु-पक्षियों के जोड़े बनवा रखे थे। जिसमें मोर, कबूतर, हिरण, शेर आदि शामिल थे। इन सभी जोड़ों को उसने मोतियों से बहुत ही अच्छी तरह से सजा रखे थे। इन सबमें उसने एक बैल भी बनवाया था, लेकिन बैलों का जोड़ा नहीं बनवा पाया था, क्योंकि दूसरा बैल बनवाने के लिए उसके पास सोना नहीं बचा था। अतः वह परेशान रहने लगा और रात-दिन बैल का जोड़ा बनवाने के लिए सोचने लगा।

एक बार चम्पापुर नगर में बहुत जोरों की बारिश हो रही थी। पूरे सात दिन तक लगातार बारिश होती रही। लुब्धक के घर के पास नदी में इतना पानी भर गया कि वहां जाने की किसी में हिम्मत नहीं थी। लेकिन लुब्धक को तो सिर्फ अपने बैल के जोड़े बनाने की चिंता थी। वह बिना सोचे ही पानी में जाकर लकड़ी उठाकर उनके गट्ठे बनाने लगा। लुब्धक को यह सब करते हुए चम्पापुर की रानी देख रही थी, उसने राजा को बुलाकर ये दिखाया। राजा को लुब्धक पर बड़ी दया आई, उन्होंने सोचा कि यह शायद बहुत गरीब है, जो इतनी बारिश में भी अपनी जान की परवाह करे बगैर लकड़ियां इकट्ठी कर रहा है।

रानी की निगाह

उन्होंने तुरंत अपने सैनिकों से लुब्धक को बुलवाया। राजा ने लुब्धक को अपने खजाने में से जितना चाहे पैसे लेने को कहा। तब लुब्धक ने कहा- महाराज मुझे पैसे नहीं चाहिए। मुझे तो अपने बैल का जोड़ा पूर्ण करना है। लुब्धक राजा को लेकर अपने घर आया। राजा उसके घर में रखे सोने के जोड़ों को देखकर आश्चर्यचकित रह गया।

तभी लुब्धक की पत्नी एक थाल में बड़े ही सुंदर रत्न लेकर आई। यह देखकर लुब्धक घबरा गया। उसे लगा कि कहीं मेरी पत्नी यह रत्न राजा को न दे दे। उसने तुरंत ही अपनी पत्नी से वह थाल ले लिया। राजा ने देखा कि लुब्धक के हाथ कांप रहे थे।

तब राजा ने कहा- लुब्धक तू कितना कंजूस है। तुम किसी को कैसे कुछ दे सकते हो? तुम्हारे हाथ ही कांप रहे हैं। इतना कह कर राजा वहां से चले गए। लेकिन लुब्धक को इस घटना से कुछ फर्क नहीं पड़ा। उसके दिमाग में तो अभी भी सोना ही घूम रहा था।

लालच बुरी बला

लुब्धक पैसा कमाने के लिए दूसरे देश चला गया। वहां उसने बहुत सारा सोना कमाया। वह अपनी कमाई लेकर अपने देश आ ही रहा था कि समुद्र में बड़ा तूफान आया। इस तूफान में उसका पैसा भी डूब गया। और तो और, वह स्वयं भी डूब कर मर गया।

मरने के बाद अगले जन्म में वह सांप बना और अपने सोने की रक्षा करने लगा। वह सोने के पास किसी को भी नहीं आने देता था। एक दिन लुब्धक के बड़े बेटे ने गुस्से में आकर सांप को मार दिया। उसे यह तो पता नहीं था कि यह सांप पिछले जन्म में उसके पिता थे। लुब्धक ने हमेशा अपने मन में लालच रखा, इसीलिए वह तिर्यंच बना। बाद में नर्क चला गया।

कहानी की सीख

इसीलिए बच्चों हमें कभी भी लालच नहीं करना चाहिए। हमारे पास जो भी खिलौने हैं, उसे सबके साथ बांटना चाहिए। यही तो है उत्तम शौच धर्म।

उत्तम सत्य

सच से बड़ा तप नहीं

एक बार की बात है। चौथी कक्षा की एक छात्रा विद्यालय के गृहकार्य को पूरा नहीं कर पाती है। जब वह विद्यालय जाती है तो अस्हपाठी को गृहकार्य न कर पाने के लिए अध्यापक की डांट खाते और पिटते देखती है। वह डर जाती है और शिक्षक से झूठ बोल देती है कि मैंने गृहकार्य तो पूरा किया है, लेकिन नोटबुक लाना भूल गई हूं। यह बात जब वह घर जाकर मां को बताती है तो मां उसे तीन दोस्तों- वसु, नारद और पर्वत की कहानी सुनाती हैं।

कालांतर में राजा वसु न्यायपूर्वक राज्य संचालन करते थे। उन्होंने अपने सिंहासन के नीचे के पाये स्फटिक मणि के

बनवा रखे थे, जिससे देखने वाले सभी लोग यही समझते थे कि राजा का सिंहासन अधर में है। उसके पुण्य प्रताप से जनता में भी यही प्रसिद्धि हो गई थी कि राजा बहुत ही सत्यवादी हैं। इसलिए सत्य के बल से राजा का सिंहासन आकाश में अधर में टिका हुआ है।

वहीं, पर्वत बालकों को धर्माध्ययन कराने लगा। नारद भी गुरु से ज्ञान प्राप्त कर उनकी दीक्षा के बाद अन्यत्र चले गए थे। एक समय की बात है। नारद अपने सहपाठी गुरुपुत्र पर्वत से मिलने आए। उस समय पर्वत अपने शिष्यों को पढ़ा रहे थे। एक सूत्र वाक्य 'अजैर्यष्टव्यम्' का अर्थ उन्होंने समझाया कि अज अर्थात् बकरों से हवन करना चाहिए। यह सुन नारद ने कहा, नहीं मित्र ! इस श्रुतिवाक्य का ऐसा अर्थ नहीं है। नारद बोले- 'अजैस्त्रिवार्षिवैर्धान्यैर्यष्टव्यम् अज'

अर्थात् तीन वर्ष पुराने चावल से हवन करना चाहिए।

इस पर पर्वत ने दुराग्रहवश कहा- नहीं, तुम्हारा अर्थ गलत है। असल में 'अज' का अर्थ बकरा ही है। यह विवाद अधिक बढ़ गया। कई लोगों तक यह बात पहुंची। उसके बाद कुछ प्रतिष्ठितजनों ने कहा कि क्यों न इसका निर्णय राजा वसु की सभा में किया जाए।

यह कह कर सभी चले गए। पर्वत ने घर आकर सारा वृतांत अपनी मां से कह सुनाया। माता समझ रही थी कि पर्वत का कथन गलत है। फिर भी माता पुत्र की रक्षा और उसकी प्रतिष्ठा के लिए राजा वसु के पास पहुंची।

वह बोली- पुत्र, तुम्हें याद होगा कि मेरा एक वर तुम्हारे पास धरोहर में है। इसलिए आज मैं उसको चाहती हूं। राजा वसु ने कहा- हां ! याद है माता। तुम जो चाहो, वह मांग लो। तब माता ने कहा- पर्वत और नारद का किसी सूत्रार्थ पर झगड़ा हो गया है। उसके निर्णय के लिए आपको चुना गया है। अतः आप पर्वत के पक्ष का ही समर्थन कीजिए। राजा ने 'तथास्तु' कहकर उसे वर दे दिया।

अगले दिन राजसभा में पर्वत और नारद राजा वसु के पास आए। दोनों ने 'अजैर्यष्टव्यम्' का अपना-अपना अर्थ सुनाया और कहा कि आप ही इसका अर्थ बताइए। यद्यपि राजा वसु के स्मरण में तत्क्षण ही सही अर्थ आ गया कि तीन वर्ष के पुराने धान यानी चावल से हवन करना चाहिए। ऐसा गुरु जी ने अर्थ प्रतिपादित किया था। फिर भी उन्होंने गुरु माता को दिए वचन के निमित्त असत्य का पक्ष लेते हुए अपनी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा का परवाह नहीं किया। राजा वसु ने कहा- जो पर्वत

कहता है, वही सत्य है।

यह कहते ही राजा वसु का सिंहासन धरती में धंसने लगा। यह देख नारद ने तथा सभा में बैठे प्रतिष्ठित लोगों ने कहा, राजन्! देख लो, इतने महाझूठ का फल, तुम्हारा सिंहासन पृथ्वी में धंसता जा रहा है। आप संभलिए और अभी भी सत्य बोल दीजिए। इतना कहने पर भी राजा वसु नहीं संभले। इस महापाप के फलरूवरूप उसी समय पृथ्वी फटती चली गई और राजा का सिंहासन उसमें धंसता चला गया। तब वह राजा मरकर सातवें नरक में चला गया। इस दुर्घटना से शहर में हाहाकार मच गया।

कहानी की सीख

इस कहानी से हमें सीख मिलती है कि असत्य कभी नहीं बोलना चाहिए और न ही झूठ का पक्ष लेना चाहिए। वह छात्रा समझ गई कि असत्यवादी लोग अपने गुरु, मित्र और बंधुओं के साथ भी विश्वासघात करके दुर्गति में चले जाते हैं। वहीं, सत्य बोलने वाले लोगों को वचन सिद्धि हो जाया करती है। इसलिए हमेशा सत्य धर्म का आदर करना चाहिए।

उत्तम संयम धर्म

नियम पर अटल रहें

जिसके जीवन में संयम नहीं उसका जीवन बिना ब्रेक की गाड़ी जैसा है। अब सवाल उठता है कि क्या केवल मनुष्य ही जीवन में संयम का पालन करता है या तिर्यंच भी संयम धर्म का पालन कर अपने भव को सुधारते हैं।

एक समय की बात है। एक गांव के पास जंगल में सागर सेन मुनिराज आए। वे वहां सामयिक (ध्यान) कर रहे थे। दूर बैठी एक लोमड़ी यह सब देख रही थी। लोमड़ी मुनिराज को ध्यान मग्न देख उन्हें मृत समझकर, उन्हें खाने के लिए उनकी ओर आगे बढ़ी। मुनिराज बिना डरे ध्यान मग्न रहे। मुनिराज ने लोमड़ी को हिंसा के पाप से बचाने के लिए उसे कहा- हे भव्य

जीव ! तुम अपने बुरे कर्मों के कारण ही तिर्यंच गति पाई हो। हिंसा छोड़कर तुम्हें हिंसा न करने का नियम लेना चाहिए। यह सुनकर लोमड़ी शांत होकर उनके पास बैठ गई। लोमड़ी ने रात में भोजन और जल का त्यागकर नियम लिया कि सूर्यास्त के बाद वह कुछ नहीं खाएगी और ना ही किसी पशु को मारेगी। इसके कुछ समय पश्चात एक दिन लोमड़ी को बहुत प्यास लगी थी। वह प्यास बुझाने के लिए कुआं के पास गई। लोमड़ी ने कुआं के पास जाकर देखा कि वह बहुत गहरा है। तब वह सीढ़ियों की मदद से कुआं के अंदर उतरी। जब वह कुआं में गई तो उसे वहां बहुत अंधेरा दिखाई दिया। अंधेरा देख लोमड़ी को लगा कि सूर्यास्त हो गया है और उसे सूर्यास्त के बाद कुछ ना खाने पीने का नियम याद आया। लोमड़ी कुआं के बाहर आ गई। जब वह बाहर आई तो उसे उजाला दिखा।। वह फिर से कुआं के अंदर गई। उसे फिर वहां अंधेरा देख लगा कि रात हो गई है। वह फिर बाहर आ गई। ऐसा उसने कई बार किया।

लोमड़ी का अगला जन्म

तब तक सूर्यास्त हो गया, लेकिन उसने संयम को नहीं छोड़ा और नियम पर अटल रही। इस प्रकार लोमड़ी थक कर

प्यासा ही एक जगह बैठ कर मुनिराज के उपदेश को याद करने लगी और प्यासा ही मर गई। लोमड़ी ने अगले जन्म में राजकुमार प्रीतिकर के रूप में जन्म लिया। राजकुमार ने भगवान महावीर के समोशरण में जाकर मुनि दीक्षा ले ली और नियम से मोक्ष चला गया।

कहानी से शिक्षा

हमें भी अपने जीवन में छोटे-छोटे नियम से संयम की शुरुआत करनी चाहिए। हमें स्वयं को संयमित रखने का प्रयास करना चाहिए। हमें हिंसा जैसी चीजें नहीं देखना चाहिए। हमें यह नियम लेना चाहिए कि ऐसी कोई चीज नहीं खाएंगे जिसमें हिंसा हो। अष्टमी और चौदस को पूजा करने का नियम रखना चाहिए। ऐसे नियम लेने से हमारी इच्छा शक्ति मजबूत होती है।

उत्तम तप

तप की महिमा

बात धार्मिक नगरी उज्जयिनी की है। वहां एक राजा थे। उनके दो बेटे थे- भर्तृहरि और शुभ चंद्र। एक दिन दोनों तपस्या करने चले गए। भर्तृहरि एक मंत्र-तंत्र वाले तपस्वी के पास गए और शुभ चंद्र ने एक परमपूज्य दिगम्बर मुनिराज की शरण ली। दोनों को तपस्या करते करते 12 वर्ष बीत गए।

एक दिन भर्तृहरि ने तपस्या से किसी भी वस्तु को सोने में बदलने वाला विशेष तरल अर्जित किया। उस तरल को वे अपने भाई शुभ चंद्र के साथ साझा करना चाहते थे। उन्होंने अपने अनुयायी को शुभ चंद्रजी के पास भेजा, लेकिन शुभ चंद्रजी

महाराज ने उसे लौटा दिया। अनुयायी ने वापस आकर भर्तृहरि को सारी बात बताई। इसके बाद भर्तृहरि स्वयं अपने भाई से मिलने गए और कहा- भाई यह कोई साधारण तरल नहीं है। मैंने 12 वर्ष की कठोर तपस्या के बाद इसे हासिल किया है।

शुभ चंद्र महाराज ने पूछा- क्या ये आपकी तपस्या का फल है? शुभ चंद्रजी ने अपने पैरों के पास से कुछ मिट्टी ली और उसे चट्टान पर फेंक दिया। वह पूरी बड़ी चट्टान सोने में बदल गई। इससे भर्तृहरि चौंक गए। वह शुभ चंद्र महाराज के पैरों पर गिर गए और कहा कि मैंने अपनी मूर्खता व अज्ञानता के कारण आपके तप के महत्व को नहीं समझा। झूठी तपस्या में पड़कर मैंने बहुत पाप कमाए हैं। अब आप ही मुझे उत्तम तप का रास्ता दिखाएं। इसके बाद भर्तृहरि ने भी अपने भाई शुभ चंद्रजी महाराज की तरह ही दिगंबरी दीक्षा ली।

कहानी से सीख

इसका अर्थ है कि उत्तम तप वह नहीं होता, जिससे सांसारिक सुखों को अर्जित करने के लिए जाना जाता है। उत्तम तप सांसारिक दुःख से छुटकारा पाने के लिए है और आत्मा की मुक्ति के लिए किया जाता है ।

उत्तम त्याग

जिससे हो समाज का भला

बात सन् 1547 की है। मेवाड़ के चितौड़गढ़ में एक दानवीर भामाशाह का जन्म ओसवाल जैन परिवार में हुआ था। वे महाराणा प्रताप के सलाहकार थे। एक बार मुगल शासकों ने मेवाड़ राज्य पर आक्रमण कर दिया। दोनों सेनाओं के बीच भीषण युद्ध हुआ। मेवाड़ पर मुगलों ने जीत हासिल कर ली। हार के बाद जब महाराणा प्रताप अपने परिवार के साथ जंगलों में भटक रहे थे, तब भामाशाह ने अपनी सारी जमा-पूंजी महाराणा प्रताप को समर्पित कर दी। महाराणा प्रताप के लिए उन्होंने अपनी निजी सम्पत्ति में इतना धन दान दिया था, जिससे

20 हजार सैनिकों का 14 वर्ष तक निर्वाह हो सकता था।

भामाशाह से प्राप्त सहयोग के कारण महाराणा प्रताप में नया उत्साह आया। उन्होंने दोबारा सैन्य शक्ति संगठित किया। नए जोश और उत्साह से मुगल शासकों को पराजित किया और फिर से मेवाड़ का राज्य प्राप्त किया। अतः आज इतने वर्ष बाद भी जो व्यक्ति अच्छी भावना से दान करता है, उसे भामाशाह कहा जाता है।

दान अवश्य करें

हम सभी को अपने धर्म, देश और समाज के लोगों के लिए दान करना चाहिए। हमें हर दिन मंदिर की दानपेटी में दान करना चाहिए। अगर मंदिर नहीं जा सकते, तो घर पर मंदिर के लिए अलग गुल्लक बनाकर दान करना चाहिए। मुनि महाराज के लिए आहार, शास्त्र और औषधि दान करना चाहिए। दान को सर्वोत्तम माना गया है।

उत्तम आकिंचन धर्म

तुम मनुष्य बनो

बहुत समय पहले की बात है। किसी जंगल में एक तपस्वी महाराज आए हुए थे। लोग कहते थे कि जो भी उन महाराज से आशीर्वाद लेता है, उसका जीवन धन्य हो जाता है। सकल मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। पास के गांव से एक व्यक्ति महाराज जी के पास आया और बोला- महाराज जी! मुझे आशीर्वाद दीजिए। महराज ने कहा- जाओ तुम मनुष्य बनो।

आदमी ने पूछा- महाराज जी! ये कैसा आशीर्वाद हुआ, मैं तो पहले से मनुष्य हूं।

महाराज जी ने कहा- जैसे एक चींटी के अंदर सामग्री

इकट्ठा करने की आदत होती है, वैसे ही तुम्हारे अंदर भी ज्यादा से ज्यादा सामग्री इकट्ठा करने की आदत है। चींटी तो सिर्फ उतना ही इकट्ठा करती है, जितना कि उसे आवश्यकता होती है, लेकिन तुम तो अपना पूरा जीवन इकट्ठा करने में बर्बाद कर देते हो। इसलिए पहले मनुष्य बनो, तभी मैं तुम्हें आशीर्वाद दूंगा।

दरअसल, उसी आदमी की तरह हम भी जीवन भर चीजों को एकत्र करने में लगे रहते हैं। कभी यह नहीं सोचते कि ये सब चीजें हमारे पास हमेशा नहीं रहेंगी। बस एक चीज है जो मरने के बाद हमारे साथ जाती है, वह है आत्मा।

कहानी से सीख

आत्मा के अलावा कुछ भी हमारा नहीं है। यही है अकिंचन धर्म। अकिंचन मतलब किंचित मात्र भी। मतलब कुछ भी नहीं है मेरा, यहां केवल मेरी आत्मा ही मेरी अपनी है और यही हमेशा रहने वाली है।

उत्तम ब्रह्मचर्य

...और वे अरिहंत बन गए

एक बार अयोध्या नगरी के राजा राम दीक्षा लेकर मुनि बन गए। उनकी पत्नी रानी सीता ने पृथ्वीमति मां से दीक्षा ली थी। तप के प्रभाव से वे अगले जन्म में स्वर्ग में देव बनी थीं। सीता के जीव ने मुनि राम को ध्यान करते देखा और सोचा कि राम ऐसे ही तपस्या करते रहे तो वो मुझसे पहले मोक्ष को प्राप्त हो जाएंगे।

तब सीताजी ने रामजी की तपस्या में व्यवधान लाने का सोचा, ताकि उन्हें मोक्ष न मिले और वे दोनों स्वर्ग में साथ रह सकें। बाद में दोनों साथ में मोक्ष पा लेंगे। सीता वाले देव के पास अद्भुत शक्ति थी। वह मुनि राम के पास सीता का रूप बनाकर

गईं और कहने लगी, हे राम ! बड़ी मुश्किल से मैंने आपको पाया है, आप मेरा साथ दीजिए।

मगर राम तो अपनी आत्मा में लीन थे, इसलिए उनका ध्यान नहीं टूटा। सीता ने बार-बार उनका ध्यान तोड़ना चाहा, लेकिन रामजी पर कोई असर नहीं हुआ। जब सीता को लगा कि इनका ध्यान तो टूट ही नहीं रहा, तो उन्होंने अपनी शक्ति से सौ से ज्यादा लड़कियों को बुला लिया। वे सभी लड़कियां संगीत बजाने लगीं, फिर भी रामजी तो सिर्फ अपनी आत्मा में मगन थे। वे बिना किसी भटकाव के बस ध्यान में लगे रहे। फिर मुनि राम की आत्मा शुद्ध होने लगी और वे अरिहंत बन गए। भगवान बन गए। इस दुनिया में सबसे उत्तम, सबसे खास बन गए, सबके आराध्य बन गए। इसीलिए रामजी की भारत में सभी लोग पूजा करते हैं।

कहानी की सीख

आत्मा में लीन रहने का नाम ही तो है उत्तम ब्रह्मचर्य। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है मुनि राम की यह सच्ची कहानी। हम सभी भी यही इच्छा करते हैं कि हम भी अपनी आत्मा को जान पाएं और एक दिन अपनी आत्मा को शुद्ध बना लें।

उपवास

आत्मा की परीक्षा है उपवास

आचार्य श्री अनुभव सागर जी महाराज

मात्र भोजन का त्याग तो 'अनशन' हुआ जिसमें कषायवश भी, कभी अपनी बात मनवाने, किसी आशा की पूर्ति के लिए आदि कारणों से भोजन-अन्न छोड़ दिया जाए, परंतु उपवास तो आत्मा की परीक्षा है।

पर्दूषण

प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है, परंतु सुख की वास्तविक परिभाषा से अनभिज्ञ वह शरीर के पोषण और मन की मनमानी में लगा रहता है। पदार्थों को भोगते हुए उसे पता ही नहीं चलता कि वह कब इनका ही भोग बनता जाता है। जैनाचार्य कहते हैं- जीवन निर्वाह के लिए पदार्थों का उपयोग और उपभोग आवश्यक है, परंतु पदार्थों पर आधारित हो जाना तो एक प्रकार की गुलामी ही है और भला गुलामी से आज तक किसे सुख मिला है।

इस इन्द्रिय और विषय गुलामी का मार्ग जो अनुभवी तपोधनों ने अपने स्वानुभव से हमें प्रस्तुत किया है, वह है शरीर के पोषण का मार्ग। चूंकि इसका पोषण करते हुए अनन्त भव व्यतीत हुआ। इसे अमेरिकन खिलाओ, मैक्सिकन-चाइनीज या भारतीय और कितना भी खिलाओ, तन का तो स्वभाव ही है, वह उसे मल में ही परिवर्तित कर देगा ।

केसर, चंदन, द्रव्य सुगंधित वस्तु देख सारी।
देह फरसतैं होय अपावन निश दिन मल झारी।।

ऐसी अशुचि देह की गुलामी ज्ञानी नहीं करता है, लेकिन

वह तप का मार्ग चुनकर इसे अपना सहयोगी बनाता है। उसी तप का एक अंग है 'उपवास' उप अर्थात समीपे... वास अर्थात वसति अर्थात

उप समीपे वसति इति उपवासः।

इसका अर्थ यह हुआ कि 'निज के निकट आ बसने का नाम है उपवास'।

उपवास मात्र भोजन का त्याग नहीं बल्कि पांचों इंद्रियों के विषय सेवन, उनकी अनुरक्ति और आसक्ति से उठने का नाम है। मात्र भोजन का त्याग तो 'अनशन' हुआ जिसमें कषायवश भी, कभी अपनी बात मनवाने, किसी आशा की पूर्ति के लिए आदि कारणों से भोजन-अन्न छोड़ दिया जाए, परंतु उपवास तो आत्मा की परीक्षा है। अपनी इच्छाओं की समीक्षा है तन की नश्वरता का चिंतन और आत्म गुणों का अभिनंदन है।

ममत्व से विरक्ति

उपवास मात्र तन की साधना नही, अपितु तन और चेतन के पृथक अस्तित्व की स्वीकारोक्ति और तन के प्रति ममत्व से विरक्ति है। कहते हैं-

It is the fasting of our body but the testing of our soul.

अर्थात उपवास होता तो तन का है, परंतु यह साधना-परीक्षा तो चैतन्य की होती है।

पूज्य आचार्य समंतभद्र जी ने 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार ग्रंथ' में उपवास की व्याख्यान में बहुत स्पष्ट रूप से स्नान, अंजन, आभूषण अर्थात शृंगार आदि पंचेन्द्रिय विषयों, आरभ-सारंभ क्रियाओं का परिहार कर धर्मामृत के पान करते हुए ज्ञान-ध्यान में लीन होने का अत्यंत युक्ति पूर्ण उपदेश दिया है। शरीर का यह पोषण अवश्य ही परिणामस्वरूप आत्मा गुणों के संपोषण का निमित्त बनता है।

तत्त्वार्थ सूत्र

अनावश्यक का परिहार

आचार्य श्री अनुभव सागर जी महाराज

आत्मविवेक की जागृति का इस पंचम काल में यदि कोई उपाय है तो वह है-स्वाध्याय। श्रुत का अभ्यास, संयम भाव की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और दृढ़ता ही इसका निमित्त बनता है।

जीवन-मरण की अनियत किंतु सतत प्रक्रिया, विभिन्न पर्यायों में भ्रमणशील जीव, रूप-रंग, पद-प्रतिष्ठा, सुख-दुःख में असमानता आदि महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के मध्य यदि मनुष्य पर्याय की विवेक शक्ति को पाकर भी कोई विचार नहीं कर पाए तो फिर इतना बहुमूल्य जीवन कौओं को भगाने के लिए रत्न को फेंक मारने जैसा ही है।

आत्मविवेक की जागृति का इस पंचम काल में यदि कोई उपाय है तो वह है-स्वाध्याय। श्रुत का अभ्यास, संयम भाव की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और दृढ़ता ही इसका निमित्त बनता है। निर्ग्रन्थ तपोधन, आर्षमार्गानुयायी श्रमणों में भगवान वर्द्धमान की दिव्य ध्वनि से उद्घोषित, गुणधर परमेष्ठी द्वारा प्रस्तुत और अनुबद्ध तथा अननुबद्ध केवलियों से चली आधी सुश्रुत परंपरा ने समय के साथ अपने बुद्धि कौशल और अनुभव के द्वारा लिपिबद्ध कर हम अल्पज्ञों पर अनन्त उपकार किया है। ऐसे ही जिनागम रहस्य का एक महान ग्रंथ है आचार्य भगवंत 'उमास्वामी' जी विरचित 'तत्त्वार्थ सूत्र' जिसे मोक्ष का साक्षात् स्वरूप, उद्घोषक होने से 'मोक्षशास्त्र' भी कहा जाता है। शास्त्र लेखन की विधा में अक्षर, अल्प मात्रा से सार्थ और संदेह विपर्यय से रहित सूत्र माना गया है अर्थात् यहां भी आचार्य यही सिद्ध कर रहे हैं कि जितना आवश्यक हो उतना ही लिखो।

वास्तव में अनावश्यक का परिहार ही तो गृहस्थ को श्रावक और श्रावक को संत बना देता है।

मोक्ष और मोक्षमार्ग

तत्त्वार्थ सूत्र की उत्पत्ति भी एक संदेश ही है कि आत्मापियसु प्रज्ञावान प्राणी शब्द सुनकर नहीं अपितु जिनेन्द्र भगवान की वीतराग के प्रतिरूप आचार्य के दर्शन मात्र से प्रतिबोधित हो आत्महित का कारण जानने उत्सुक हुआ, जिसके प्रतिफलस्वरूप 'मोक्ष' और 'मोक्ष मार्ग' की व्याख्या का अद्भुत शब्दार्थ- संयोजन तत्त्वार्थ सूत्र के 357 सूत्रों के माध्यम से हुआ। गृहपिच्छ विशेषण से युत आचार्य श्री उमास्वामी (श्वेतांबर मतानुसार उमास्वाति -सूत्र 344) ने एक-एक सूत्र को रहस्य से इतना परिपूर्ण रखा कि आगामी आत्म-अन्वेषी और आर्षान्वेषी आचार्यों ने इस पर विभिन्न विशाल टीका ग्रंथों के द्वारा इसके रहस्योद्घाटन को अपने जीवन का सार बना लिया।

समान रूप से मान्य

आचार्य पूज्यपाद की महनीय कृति 'सर्वार्थसिद्धि', उस पर आचार्य अकलंक देव की 'राजवार्तिक,' पुनः आचार्य विद्यानंदी

की 'श्लोकवार्तिक' आदि अनेकानेक स्वनामधन्य आचार्यों ने मां सरस्वती की उपासना का अवसर इस ग्रंथ के रहस्यों को खोलकर प्राप्त किया।

जैन एवं बौद्धों की पद्धति सामान्यतः जनता को उनकी ही भाषा में उपदेश देने की रही है, तभी जैनों के ग्रंथ प्राकृत तथा बौद्धों के बहुतायत में पालि भाषा में उपलब्ध होते हैं। धीरे-धीरे ब्राह्मणों का बाहुल्य संस्कृत भाषा के प्रयोग के रूप में दृष्टिगोचर होने लगा। अतः जन-जन तक आत्म धर्म के मर्म को पहुंचाने के लिए फिर दोनों शास्त्रकारों ने संस्कृत भाषा में साहित्य सृजन प्रारंभ किया और दिगम्बर परम्परा में संस्कृत भाषा का 'तत्त्वार्थ सूत्र' सर्वप्रथम ग्रंथ लिपिबद्ध हुआ। लघुकाय होते हुए भी प्रमेय का सुव्यवस्थित वर्णन होने से यह जैन परंपरा के सभी संप्रदायों में कुछ सूत्रों के अंतर से समान रूप से मान्य है।

आध्यात्मिक जगत में भी लोकप्रिय

दार्शनिकों के साथ ही यह आध्यात्मिक और व्यावहारिक जगत में भी अत्यंत लोकप्रिय हुआ तभी तो हिन्दुओं की गीता, ईसाइयों में बाइबिल और मुस्लिमों में कुरान की तरह जैनों में सर्वाङ्गी 'तत्त्वार्थ सूत्र' का महत्व स्वीकार्य है। इसकी

लोकप्रियता और श्रद्धा इसी बात से आंकी जा सकती है कि सूत्र पाठ सामान्य श्रावक भी प्रतिदिन तथा पर्व के दिनों में अत्यंत श्रद्धा के साथ एक-एक दिन अध्यायों की वाचना बड़े ध्यान से श्रवण की जाती है। इसके संबंध में यह सूक्ति भी अति प्रचलित है कि

दशाध्याय परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति,

फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनि पुङ्गवै।।

अर्थात दश अध्याय के श्रद्धापूर्वक पाठ मात्र से एक उपवास का फल मुनिश्रेष्ठ के द्वारा बताया गया है।

सभी टीका ग्रंथों की समाप्ति आदि के वाक्यों से इस ग्रंथ का नाम तत्त्वार्थ या तत्त्वार्थ सूत्र यह सिद्ध होता है। तत्त्वार्थ सूत्र के प्रथम चार अध्याय में जीव तत्त्व, पंचम ध्याय में अजीव तत्त्व, षष्टम्-सप्तम अध्याय में आस्त्रव तत्त्व, अष्टम् अध्याय में बंध तत्त्व, नवम अध्याय में संवर तथा निर्जरा तत्त्व और दशम अध्याय में मोक्ष तत्त्व का वर्ण समाहित है।

अत्यंत सुगम वर्णन

प्रथम अध्याय में प्रमुखता से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सप्त तत्त्व, उनके प्रस्तुतिकरण अर्थात निक्षेप-नय आदि का

अत्यंत सुगम वर्णन विभिन्न भेद-प्रभेदों के साथ है। द्वितीय अध्याय में जीव के स्वभाव, संसारी-मुक्त अवस्था, विभिन्न पर्यायों, इन्द्रिय आदि विभाव का वर्णन है।

तृतीय अध्याय में नरक गति, अधोलोक, वहां के दुख, आयु आदि का तथा चतुर्थ अध्याय में मध्यलोक एवं उर्ध्वलोक की स्थितियों का अत्यंत स्पष्ट वर्णन है।

पंचम अध्याय अजीव तत्त्व की मुख्यता से पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों के परिणमन, स्वभाव स्थिति और प्रदेशादिक का वर्णन करता है।

षष्ठम् अध्याय शुभ और अशुभ योगों से आत्म प्रदेशों के परिस्पंदन और उनसे होने वाले आस्त्रव, आस्त्रव के हेतुओं का वर्णन और सप्तम अध्याय के शुभास्त्रव के हेतुओं तक सविस्तार करता है। अष्टम अध्याय कर्म बंध हेतु प्रत्यय अर्थात मिथ्यात्त्व, अविरति, कषाय, प्रमाद और योग के साथ कर्मों की स्थिति, अनुभाग आदि अवस्थाओं का वर्णन करता है। नवम अध्याय में संसार निवृत्ति के कारण भूत संवर तथा निर्जरा तत्त्व का तथा दशम अध्याय में तपश्रुत आराधना के द्वारा हुए संवर निर्जरा के फलभूत मोक्ष के स्वरूप का वर्णन किया गया है।

क्षमावाणी पर्व

दशलक्षण पर्व का प्रारंभ भी क्षमा से शुरू होता और क्षमावाणी पर्व पर समाप्त होता है। इसी से ज्ञात होता है कि जीवन में क्षमा का कितना महत्व है। क्षमा के संबंध में आचार्य का कहना है -

जन्मजात बैरी से क्रूर पशुगण भी क्रूरता छोड़ देते हैं। यथा-

सारंगी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नंदिनी व्याघ्र पोतं।
मार्जारी हंसबालं प्रणयपरवशा केकिकांता भुजंगीम्।।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जंतवोऽन्ये त्यजंति।
श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमितकलुषं योगिनं क्षीणमोहम्।।।

अर्थात् हिरणी सिंह के बच्चे का स्पर्श पुत्र की भांति करती

है, गाय व्याघ्र के बच्चे को दूध पिलाती है, बिल्ली हंस के बच्चों का प्रीति से लालन-पालन करती है एवं मयूरी सर्पों को प्यार करने लगती है। इस प्रकार से जन्मजात बैर को भी क्रूर जंतुगण छोड़ देते हैं। कब ? जबकि वे पापों को शांत करने वाले मोहरहित और समताभाव में परिणत ऐसे योगियों का आश्रय पा लेते हैं अर्थात् ऐसे महामुनियों के प्रभाव से हिंसक पशु अपनी द्वेष भावना छोड़कर आपस में प्रीति करने लगते हैं। ऐसी शांत भावना का अभ्यास इस क्षमा के अवलंबन से ही होता है। इसलिए इन दशधर्मों को अपने में समाहित करने का प्रयास अवश्य करें और मनुष्य पर्याय को सार्थक करें । यही मंगल आशीर्वाद है।

श्रीफल जैन न्यूज
रंग महल, दूसरी मंजिल,
इतवारिया बाजार कांच मंदिर के पास, इंदौर

पर्यूषण

अंतर्मुखी मुनि श्री पूज्य सागर जी महाराज